सारांशिका

वर्तमान प्रतिस्पर्द्धी युग में जहाँ भूमंडलीकरण के कारण समस्त संसार को एक विश्व ग्राम की संज्ञा दी गयी है वहीं सांस्कृतिक साम्राज्यवाद भी अपनी चरम स्थिति पर है। ऐसे में भारतीय संस्कृति स्वयं इतनी समृद्ध होती हुई भी लगातार पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होती जा रही है। मौलिकता शेष है तो यहाँ की बहुरंगी लोक-संस्कृति एवं लोक-साहित्य में ही। विशेषकर ग्रामीण सभ्यता व आदिवासी समाज में लोक संस्कृति की गहरी छाप हम देख सकते हैं। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की अस्मिता को सच्चे अर्थों में समझने और उसे भविष्य में संचित रखने हेतु लोक को समझने के साथ ही लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति का अध्ययन भी अत्यावश्यक है।

भारत का पूर्वोत्तर प्रदेश जनजाति बहुल क्षेत्र है। यहाँ कई सारी जनजातियों जैसे गारो, खासी, जयंतिया, न्यीसी, अंगामी, भूटिया, कुकी, रेंगमा, बोड़ो, देउरी इत्यादि की अनादि काल से महत्वपूर्ण उपस्थिति रही है। इन सभी जातियों-जनजातियों की लोक-कला, लोक-साहित्य एवं लोक-संस्कृति अपने आप में पूर्ण, समृद्ध, अतुलनीय और विशिष्ट है। ऐसे ही भिन्न प्रांतों के जातीय तथा आदिवासी समुदायों के समुच्चय से बना विशिष्ट समुदाय है- चाय जनगोष्ठी। प्रस्तुत शोधकार्य के अंतर्गत असम की विख्यात चाय जनगोष्ठी के समृद्ध लोक साहित्य का समाजभाषिक अध्ययन किया गया है। इस शोधकार्य का शीर्षक है- *"चाय जनगोष्ठी के लोक साहित्य का समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन (असम के विशेष संदर्भ में)।"* ग़ौरतलब है कि चाय जनगोष्ठी भारत के विभिन्न प्रांतों से असम के चाय बागानों में लाये गये श्रमिकों का समाज है। इन श्रमिकों की संस्कृति, भाषा और समाज सभी भिन्न थे किन्तु कालांतर से ये सभी एकजुट होकर असम में स्थायी निवासी के रूप में जीवन-यापन कर रहे हैं।

चाय जनगोष्ठी के भाषाई समाज और संस्कृति के विस्तृत अध्ययन-विश्लेषण हेतु शोध-कार्य के कुछ उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं -

1. चाय जनगोष्ठी के अस्तित्व एवं अस्मिता को वृहत संदर्भों में उद्घाटित करना।
2. चाय जनगोष्ठी की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दशा को प्रस्तुत करना।
3. चाय जनगोष्ठी के लोक साहित्य के स्वरूप एवं महत्व को रेखांकित करना ।
4. चाय जनगोष्ठी की भाषा एवं संस्कृति का अध्ययन करना।

5. चाय जनगोष्ठी की भाषा, साहित्य एवं संस्कृति को सामाजिक संदर्भों में देखना।
6. लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से चाय जनगोष्ठी की संस्कृति का अध्ययन करना।
7. लोक साहित्य के परिप्रेक्ष्य में लोक और शास्त्र की अवधारणा को उद्घाटित करना।
8. चाय जनगोष्ठी के लोक साहित्य की विशिष्टता एवं समृद्धि को उजागर करना।
9. समाजभाषाविज्ञान के विभिन्न उपकरणों के आधार पर चाय जनगोष्ठी के लोक साहित्य का विश्लेषण करना।
10. चाय जनगोष्ठी में वाचिक रूप में प्रचलित लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं को संरक्षित करना।
11. भारतीय लोक साहित्य में चाय जनगोष्ठी के लोक साहित्य के महत्व को रेखांकित करना।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रस्तुत शोध-कार्य में समाजशास्त्रीय, ऐतिहासिक, विश्लेषणात्मक, समाजभाषावैज्ञानिक तथा आंकड़ों पर आधारित इन्द्रियानुभविक विश्लेषण पद्धति को शोध-प्रविधि के रूप में यथास्थान अपनाया गया है। शोध-कार्य के लिए असम के डिब्रूगढ़, तिनसुकिया, चराईदेव, शिवसागर, जोरहाट, शोणितपुर आदि जिलों के चाय श्रमिक समाज का अध्ययन के क्षेत्र के रूप में चयन किया गया है। क्षेत्र-सर्वेक्षण, सहायक ग्रंथों तथा पत्र-पत्रिकाओं को आधार बनाकर लोक साहित्य से संबंधित तथ्यों का संग्रह किया गया है। तत्पश्चात् चाय जनगोष्ठी के लोक साहित्य की विशिष्टता को रेखांकित करते हुए उसका समाज संदर्भित अध्ययन-विश्लेषण किया गया है। सम्पूर्ण शोध-प्रबंध कुल छह अध्यायों में विभक्त है।

शोध-प्रबंध के प्रथम अध्याय *'समाजभाषाविज्ञान: अवधारणा एवं संकल्पनाएँ'* में भाषा और समाज के अंतःसंबंध, समाजभाषाविज्ञान की अवधारणा तथा इसके विभिन्न उपकरणों को सोदाहरण स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। भाषा का मूल उद्देश्य संप्रेषण की प्रक्रिया को संपन्न करना तथा भाषा-प्रयोक्ता की सामाजिक अस्मिता को उद्घाटित करना है। विभिन्न सामाजिक संदर्भों में मनुष्य अपनी सर्जनात्मक भाषा के जरिये सूचनाओं का आदान-प्रदान करता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि मनुष्य अपने परिवेश अथवा समाज से ही भाषा सीखता है और उसका प्रयोग भी समाज में ही करता है। इस दृष्टि से भाषा एक सामाजिक तत्व है जो सामाजिक व्यवस्था, मूल्यों के अतिरिक्त इसके प्रयोक्ताओं के विषय में सूचना देता है। अर्थात् कही गयी उक्ति के सही अर्थ को समझने के लिए उसका समाज-सापेक्ष अध्ययन अपेक्षित होता है। भाषा के इसी समाज संदर्भित अर्थ का अध्ययन-विश्लेषण समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन का मूल उद्देश्य है। इसमें समाज के संदर्भ

में भाषा में होने वाली व्यवहारगत विविधताओं का अध्ययन होता है। किसी भी समाज की विभिन्न परिस्थितियों में पात्रों द्वारा भिन्न भूमिकाओं में होने वाले व्यवहारजन्य भाषिक-प्रयोगों को समाजभाषाविज्ञान के अंतर्गत विश्लेषित किया जाता है। इसके लिए समाजभाषाविज्ञान में कुछ संकल्पनाओं की अवधारणा दी गयी है जिनमें- कोड-मिश्रण, कोड-अंतरण, कोड-बॉरोइंग, भाषाद्वैत, द्विभाषिकता, बहुभाषिकता, भाषा-अनुरक्षण, भाषा-विस्थापन, भाषा-मृत्यु, प्रयुक्ति, प्रोक्ति, पुनरुक्ति आदि प्रमुख हैं। इस अध्याय में इन सभी उपकरणों को सोदाहरण विश्लेषित किया गया है।

शोध-प्रबंध के दूसरे अध्याय *'लोक साहित्य: स्वरूप, क्षेत्र एवं विविध विधाएँ'* में लोक की अवधारणा, लोकसाहित्य की प्राचीन परंपरा, उसके स्वरूप एवं विविध विधाओं का विस्तृत उल्लेख किया गया है। लोक कहने से सहज अर्थ में यह समझना चाहिए कि लोक ऐसा जनसमूह है जो प्रकृति के सबसे निकट है, प्रकृति-प्रेमी और उसका संरक्षक है। तमाम तरह के छल-छद्म, अहंकार, बैर आदि से शून्य लोक सर्वधर्म समभाव तथा जनकल्याण की भावना में आस्था रखता है। लोक की आधारभूमि मानवतावादी भावों तथा विचारों से निर्मित है। वस्तुतः लोक वर्तमान समय में भी अपनी परंपरागत रीतियों का अनुसरण कर सच्चे अर्थों में संस्कृति का वाहक होता है। लोक प्रमुखतः ग्लोबल सभ्यता और संस्कृति के संस्पर्श से दूर अनगढ़, स्वतः स्फूर्त, सक्रिय, सचेत और बहुआयामी है। लोक द्वारा सृजित साहित्य ही लोक साहित्य है। लोक साहित्य में सामान्य जन द्वारा भावनाओं तथा अनुभवों को विषयवस्तु बनाकर गीत, कथा, गाथा, सुभाषित आदि विधाओं के माध्यम से की गयी इस सृजनात्मक अभिव्यक्ति की मौखिक परंपरा रही है। लोक साहित्य अनेक पीढ़ियों में एक कंठ से दूसरे कंठ तक प्रतिध्वनित होते हुए हस्तांतरित और क्रमशः परिवर्तित भी होते रहता है। हालाँकि अब इसे लिपिबद्ध करने का प्रयास किया जाने लगा है। लोक साहित्य में किसी भी समुदाय की आदिम अवस्था से लेकर वर्तमान समय तक की बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विचारोत्कर्ष का सम्पूर्ण भान होता है। अर्थात् लोक साहित्य का क्षेत्र अथाह सागर की तरह विशाल है जिसमें प्राकृतिक तत्वों से लेकर मानव जीवन के विविध संदर्भों, प्रसंगों तथा भावनात्मक विचारों का गीत, कथा, नाट्य, लोकोक्तियों, पहेलियों आदि के माध्यम से निरंतर प्रवाह होता रहता है।

तृतीय अध्याय *'चाय जनगोष्ठी: परिचय एवं इतिहास'* मुख्यतः चाय जनगोष्ठी के इतिहास, उनकी आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक स्थिति और भाषिक पक्ष पर केंद्रित है। इसके प्रथम उप-अध्याय के अंतर्गत भारत एवं असम की अर्थव्यवस्था में चाय उद्योग की भूमिका, असम में चाय का इतिहास और चाय उद्योगों

की स्थापना, ब्रिटिश सरकार की तमाम कूटनीतियाँ, चाय जनगोष्ठी के आगमन से पूर्व असम की स्थिति, चाय जनगोष्ठी के आव्रजन के प्रमुख कारण और तत्कालीन परिस्थितियाँ, चाय श्रमिकों के असम आने के पश्चात् उनकी विभिन्न समस्याएँ व उनके साथ हो रहे सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक, मानसिक और राजनीतिक शोषण आदि बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा की गयी है। इस उप-अध्याय में चाय जनगोष्ठी के अंतर्गत आने वाली विभिन्न प्रान्तीय जातियों व आदिवासी समुदायों के संक्षिप्त परिचय के साथ ही उनकी सांस्कृतिक विशिष्टता का अवलोकन किया गया है। दूसरे उप-अध्याय में श्रमिकों के असम आगमन से लेकर वर्तमान समय में उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति का उल्लेख किया गया है। सन् 1841 ई० से भारत के विभिन्न प्रांतों से मजदूरों का जिन परिस्थितियों में आव्रजन हुआ, वह अत्यंत दयनीय था। 'कम लागत में अधिक मुनाफा' इस नीति को अपनाकर ब्रिटिश शासन व्यवस्था तमाम झूठे प्रलोभन देकर श्रमिकों का आयात करती थी। उस दौर में जिस प्रकार से आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, शारीरिक शोषण किया जाता था उसमें आज भी कोई बहुत अधिक अंतर नहीं आया है। स्वाधीनता प्राप्ति के इतने वर्ष तो बीत गये परन्तु इन श्रमिकों का जीवन आज भी शर्ताधीन है। तीसरे उप-अध्याय में चाय जनगोष्ठी की भाषा का विश्लेषण किया गया है। चाय जनगोष्ठी के अंतर्गत भोजपुरी, सादरी, उड़िया, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मराठी, संथाली, कुड़माली, खड़िया, गोंडी, मुंडारी आदि भाषा समुदाय के लोग आते हैं। ये सभी लोग बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़ ,पश्चिम बंगाल आदि राज्यों के मूल निवासी हैं। असम में चाय जनगोष्ठी के भाषाई समाज की बात की जाए तो ऐसा देखा जाता है कि बागान इलाके के *लेबर लाइन्स* में जिस जाति अथवा जनजाति के लोग निवास करते हैं उस स्थान पर व्यवहार में वही भाषा प्रचलित होने लगती है। अन्य जातीय समुदाय के लोग भी संप्रेषण हेतु उसी भाषा का प्रयोग करने लगते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि किसी बागान की श्रमिक बस्ती में झारखंड से आये श्रमिक अधिक हैं तो वहाँ उनके साथ-साथ उड़िया, मुंडा, तेलुगु भाषी श्रमिक भी सादरी ही बोलने लगते हैं क्योंकि झारखंड से आये श्रमिक सादरी बोलते हैं। यह बात अवश्य है कि चाय जनगोष्ठी की परवर्ती पीढ़ियाँ भाषाई सह-संबंध बनाने में अधिक सफल रहीं। वर्तमान समय में चाय श्रमिक अपनी दिनचर्या में लगभग तीन से चार भाषाओं का प्रयोग करते हैं। इस आधार पर चाय श्रमिक समाज की भाषा के रूप में किसी एक भाषा को चिह्नित करना बेहद मुश्किल है लेकिन इस समाज में यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि आम बोलचाल में अपनी मातृभाषा के अलावा चाय श्रमिकों में सादरी भाषा का प्रचलन है, जिसे इस समाज की प्रमुख संपर्क भाषा (lingua-franca) कहा जा सकता है।

शोध-प्रबंध के चतुर्थ अध्याय *'चाय जनगोष्ठी की संस्कृति एवं संस्कार'* में चाय जनगोष्ठी की जीवन-शैली तथा सांस्कृतिक गतिविधियों, उत्सव-अनुष्ठानों, लोकविश्वासों व कलाओं पर विस्तार से चर्चा की गयी है। दरअसल, चाय जनगोष्ठी में दो श्रेणी के लोग हैं। पहले, वे जो सीधे-सीधे चाय उद्योग से जुड़कर जीविकोपार्जन कर रहे हैं और दूसरे, वे जो इस पेशे को छोड़ चुके हैं। इन्हें 'प्राक्तन चाह मजदूर' कहकर अभिहित किया जाता है। चाय जनगोष्ठी में प्राक्तन चाय मजदूरों की तुलना में बागानों में काम करने वाले श्रमिकों की स्थिति अधिक कष्टप्रद है। मुख्य धारा से इतर इन चाय श्रमिकों को लेबर लाइन्स की झुग्गी-झोपड़ियों में गुजारा करना पड़ता है। सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने पर चाय जनगोष्ठी में जातिगत सामाजिक-सांस्कृतिक भिन्नता के अनुरूप इनके रहन-सहन, मान्यताओं आदि में अंतर देखा जा सकता है। लगभग सौ से भी अधिक जातियों और आदिवासी समुदायों के समुच्चय के कारण इस समाज में पर्व-त्योहारों, अनुष्ठानों और मान्यताओं की बहुलता है। चाय जनगोष्ठी के विभिन्न पर्व-त्योहारों जैसे- करम पूजा, टूचु पूजा, मंगला पूजा, काली पूजा, दुर्गा पूजा, साँहराई पूजा, चारूल पूजा, सूर्याही पूजा, ग्राम पूजा आदि में नाना धार्मिक कर्मकांड तथा रीतियों का प्रचलन है। इसके अतिरिक्त चाय जनगोष्ठी में ईसाई धर्म के अनुयायी क्रिसमस, इस्टर, गुड फ्राईडे मनाते हैं तो वहीं इस्लाम को मानने वाले ईद, मुहर्रम आदि में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेते हैं। वर्तमान असम में चाय जनगोष्ठी की लगभग पाँचवीं अथवा छठी पीढ़ी का वास है। अतः इन पर असमिया संस्कृति और परिवेश का पर्याप्त प्रभाव दिखायी पड़ता है। इनमें से कुछ लोग वैष्णव धर्म के अंतर्गत भी दीक्षित हुए हैं। चाय जनगोष्ठी में मनाये जाने वाले लगभग सभी पर्व-त्योहरों में बलि की प्रथा मौजूद है। प्रायः बलि के बाद किसी व्यक्ति के शरीर पर देव-आगमन होता है जिसे 'सटिया अथवा झुपान' कहा जाता है। इसके अलावा चाय श्रमिक समाज के विभिन्न संस्कारगत अनुष्ठानों में छटि उत्सव अर्थात् छठी, *छट'* *शादी* अथवा फूलशादी, कान-नाक बिंधुवा उत्सव यानी कर्णवेधन संस्कार, विवाह और अन्येष्टि संस्कार प्रमुख हैं। जाति के अनुरूप अलग-अलग रीतियों और मान्यताओं का अनुसरण करते हुए इन संस्कारगत अनुष्ठानों का आयोजन होता है। ग़ौरतलब है कि चाय जनगोष्ठी के सांस्कृतिक अनुष्ठानों में ढोल, मादल, नागरा (नगाड़ा) आदि लोकवाद्यों की ताल पर सामूहिक रूप से झुमुर गीत-नृत्य की परंपरा प्रचलित है। इस अध्याय में चाय जनगोष्ठी की समृद्ध लोककला की विशिष्टताओं को रेखांकित किया गया है। मिट्टी से बने बर्तन, काठ-बाँस और बेंत से बने औजार, धातु-निर्मित आभूषण, वाद्ययन्त्र आदि चाय श्रमिकों की महीन कारीगरी के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। आज भी चाय जनगोष्ठी में 'खदा' यानी गोदना का प्रचलन है। इसके अंतर्गत विशेषकर विवाहित महिलाओं के लिए शरीर के विभिन्न

अंगों पर चित्र अंकित करवाना एक अनिवार्य रीति है। इस समाज में चित्रकला के अंतर्गत चाहे वह कपड़ों पर की गयी चित्रकारी हो, शादी-विवाह के अवसर पर 'कहबर' के लिए दीवार पर उकेरे गये चित्र हों ,मड़वा आदि में बनाये गये 'अल्पना' हों या फिर शरीर के विभिन्न अंगों पर बनायी गयी चित्राकृतियाँ हों ये सभी इस जनगोष्ठी की लोक कलाओं की समृद्धि और जीवंतता के साक्ष्य हैं।

पंचम अध्याय *'चाय जनगोष्ठी के गेय लोक साहित्य का समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन'* में चाय जनगोष्ठी के गेय लोक साहित्य अर्थात् लोकगीत, लोक सुभाषित और मंत्र साहित्य के अंतर्गत वाचिक और लिखित रूप में मौजूद तथ्यों का समाजभाषिक अध्ययन-विश्लेषण किया गया है। यद्यपि लोकगाथा लोक साहित्य की गेय विधा के अंतर्गत ही है किन्तु क्षेत्र-सर्वेक्षण के दौरान लोकगाथा से संबंधित कोई तथ्य प्राप्त न होने के कारण उक्त अध्याय में इसे शामिल नहीं किया गया है। षष्ठम अध्याय *'चाय जनगोष्ठी के कथात्मक लोक साहित्य का समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन'* के अंतर्गत चाय जनगोष्ठी में मौखिक और लिखित रूप में प्रचलित कथात्मक लोक साहित्य की विधाओं यथा- लोककथा और लोक नाट्य का समाजभाषावैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन-विश्लेषण किया गया है। चाय जनगोष्ठी के लोक साहित्य पर आधारित इन दोनों अध्यायों पर विस्तृत ढंग से विश्लेषण के पश्चात् निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि चाय जनगोष्ठी भाषाई और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध और विशिष्ट समाज है। इनके लोकसाहित्य के विश्लेषण से चाय श्रमिकों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थिति के साथ ही श्रमिक मन के नाना मनोभावों, आचार-विचार तथा लोकविश्वासों से संबंधित विभिन्न तथ्य उजागर होते हैं। इनके लोक साहित्य में प्रकृति को विशेष स्थान प्राप्त है। पेड़-पौधे, पशु-पक्षियों के जरिये मानवीय भावों की अभिव्यक्ति की गयी है। जातीय सम्मिश्रण के कारण इनकी भाषा भी सम्मिश्रित हुई है। असम आने के पश्चात् चाय जनगोष्ठी की भाषा और संस्कृति पर असमिया परिवेश, असम की भाषा तथा संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। चाय जनगोष्ठी के लोक साहित्य की भाषा में मुख्यतः असमिया, बांग्ला, भोजपुरी, हिंदी, उड़िया, अंग्रेजी तथा एकाध अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग मिलता है। इससे कोड-मिश्रण तथा बहुभाषिकता की स्थिति उत्पन्न होती है। इसके अलावा भाषा के निम्न कोड रूप जैसे- 'मूलुक' (मुल्क), 'आँईख' (आँख), 'जनम' (जन्म) आदि तथा उच्च कोड के शब्द रूपों जैसे- 'यंत्रणा', 'प्राण', 'कष्ट', 'सृष्टि' आदि के प्रयोग से भाषाद्वैत की स्थिति सहज ही देखी जा सकती है। यथास्थान विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित प्रयुक्तियों जैसे- कृषि विज्ञान संबंधी (धान, पाथार, फसल), प्रकृति संबंधी (फूल, पात, गाछ, डाल), संबंधसूचक (माई, बाप, बेटी, बहिन) आदि का प्रयोग मिलता है। विशेषकर षष्ठम अध्याय में कथात्मक

लोक साहित्य के अंतर्गत प्रोक्ति के स्तर पर एकालाप की स्थिति तथा विभिन्न पात्रों के बीच स्थिर और गत्यात्मक संलाप की स्थिति भी दृष्टव्य है। इसके अलावा वाक्यों में आमतौर पर यथास्थान टॉपिकीकरण तथा विभिन्न पुनरुक्तियों जैसे- 'माझे-माझे' (पूर्ण पुनरुक्ति), 'चोला-बुला' (आंशिक पुनरुक्ति), 'धन-संपत्ति' (आधिक्यबोधक पुनरुक्ति) आदि का भी प्रयोग मिलता है। कुलमिलाकर चाय जनगोष्ठी के लोकसाहित्य के अंतर्गत विभिन्न सामाजिक संदर्भों में उत्पन्न भाषाई विविधता को इन दोनों अध्यायों में उद्घाटित किया गया है। अंत में शोध-प्रबंध की समग्र उपलब्धियों को समाहार के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

प्रियंका दास